महात्मा गांधी द्वारा सन १९३५ में समिति में दिया भाषण

सन् १९३५ में समिति में आयोजित हिन्दी साहित्य सम्मलेन के २४ वें अधिवेशन में पूज्य महात्मा गांधीजी ने अपने उद्बोधन में कहा कि ...

मैं आपकी तरफ से और मेरी तरफ से भी इस उद्घाटन के लिए महाराजा साहब को धन्यवाद देता हूँ और आपका आभार मानता हूँ। मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ कि जब मैं इन्दौर में इसी सभापति का स्थान ग्रहण करने आया था, तब आप युवराज थे, उस पदवी से आपने उस सम्मेलन का उद्घाटन किया था और अब आप महाराज हैं। उस हैसियत से महाराज सम्मेलन का उद्घाटन करते हैं। उनका व्याखयान आप लोगों ने भी सुना है और मैंने भी बहुत ध्यान से सुना है। मैं उसके लिए कुछ दे सकता हूँ । लेकिन महाराज साहब ने जो हिन्दी भाषा के लिए भाव प्रदर्शित किए हैं, यदि उनको सारे भारतवर्ष में अमल में लाना है तो उन ऐसे महाराजाओं को भी कुछ अमली काम करना होगा। स्वागताध्यक्ष ने अपने भाषण में यह याद दिला दिया है कि आठवाँ अधिवेशन जब इन्दौर में हुआ था तो आपने दस हजार की रकम हिन्दी प्रचार के लिए दी थी और इसी तरह से अब भी मैं उम्मीद करता हूँ कि स्वागत समिति की ओर से जो प्रार्थना की गयी, उसको पूर्ण करने के लिए पूरी सहायता मिलेगी और मैं तो इस बात के लिए अपना सद्भाग्य समझता हूँ कि उस समय आपने युवराज की हैसियत से मदद की थी तो इस समय महाराजा की हैसियत से मदद करेंगे। हमारे करोड़पति सेठ हुकुमचंद जी भी यहीं मौजूद हैं। आपने प्रातःकाल मुझे हार पहनाया था, यद्यपि वह हार कच्चे सूत का था, परन्तु उसकीं कीमत पहनाने वाले की हैसियत से हो जाती है। रायबहादुर डॉ. सरयूप्रसादजी यहाँ मौजूद हैं, वे बीमार हैं। इसके लिए जैसा आप लोगों को दुःख है, वैसा ही मुझे भी दुःख है। परन्तु उनका हिन्दी भाषा अथवा सम्मेलन के प्रति प्रेम कम है, ऐसी तो कोई बात नहीं है। मुझे सम्पूर्णतया आशा है कि जो काम करना है वह सफल हो जाएगा। यह होते हुए भी हिन्दी संसार में कुछ हलचल मच गई है। मुझे इस बात का पता वर्धा में चल गया था और यहाँ आने के बाद मैंने और कुछ अधिक समझ लिया है। यह हलचल कैसे मच गई इस बात का पता अभी तक नहीं है। दक्षिण भारत में जो हिन्दी का प्रचार हुआ है, उसका सम्बन्ध हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से है ही नहीं, ऐसी कोई बात है ही नहीं, क्योंकि प्रचार हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन का अविभाज्य अंग है।

उस प्रचार की माता या पिता कहो सच तो यह साहित्य सम्मेलन है। यदि ऐसा मान लिया जाए तो अब दक्षिण भारत में जो ६०००० आदमी हिन्दी बोल या लिख सकते हैं, यह नामुमकिन बात है कि इस प्रचार के लिए जो धन्यवाद है वह साहित्य-समिति को न मिले। इसके लिए मुझको धन्यवाद है वह साहित्य-सम्मेलन को न मिले। इसके लिए मुझको धन्यवाद नहीं दिया जा

सकता क्योंकि मैंने जो कुछ काम किया था वह, इसके सभापति की हैसियत से ही किया था। इसमें मेरा व्यक्तिगत कुछ नहीं है। मैं तो इतना कह सकता हूँ कि वह हिन्दी प्रचार इस समिति का अविभाज्य अंग है। वह हिन्दी साहित्य सम्मेलन हिन्दी भाषा प्रचार न करके केवल साहित्य की वृद्धि करे तो यह भाषा राष्ट्र भाषा कैसे बन सकती है ? हाँ, साहित्य की वृद्धि करना हमारा परम कर्त्तव्य है, किन्तु साहित्य की वृद्धि से यह भाषा राष्ट्रभाषा नहीं बन सकती, क्योंकि साहित्य तो बँगला में भी इतना है कि उसके बराबर किसी दूसरी भाषा में नहीं है। साहित्य का दूसरा नम्बर मराठी भाषा रखती है। हिन्दी को तीसरा या चौथा स्थान मिल सकता है, इसमें भी मुझे तो शक है, किन्तु हिन्दी भाषा को बहुत आदमी बोलते है और यह भाषा सीखने और पढ़ने में सरल है। इसलिए यह राष्ट्रभाषा होने का अधिकार रखती है। यह हिन्दी प्रचार इस हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अंग न हो तो मेरे सरीखे व्यक्ति को इसका सभापति बनाना भी योग्य नहीं है, क्योंकि इसके साहित्य विषय में तो मैंने चंचुपात भी नहीं किया है। हिन्दी साहित्य की दृष्टि से तो मैं बहुत कम योग्यता रखता हूँ। जो चन्द लडकिया यहाँ बैठी हुई हैं, उनमें से बहुत सी प्रथमा उत्तीर्ण हो चुकीं हैं और मध्यमा की तैयारियाँ कर रही हैं। यदि मैं प्रथमा में भी बैठ जाऊं तो ये पुरूषोत्तमदास जी मुझे उत्तीर्ण होने लायक नम्बर ही न दें, क्योंकि मैं व्याकरण तो जानता ही नहीं। जायसवालजी ने जैसा कहा है, वैसा मानने में मुझे भी एतराज नहीं। मुझे गुजराती से कोई पक्षपात नहीं, मुझे जो सभापति बनाया गया है, वह इसलिए कि मेरे द्वारा हिन्दी का कुछ प्रचार हो अन्यथा योग्यता की ही कोई बात होती तो एक लड़की को भी यहाँ बिठा दिया जा सकता था। महारानी विक्टोरिया के लिए भी ऐसा ही कुछ हुआ था। सचिव ने कह दिया था, सारा काम तो मैं कर लिया करूँगा आप तो केवल सही कर दें, परन्तु ऐसा यहाँ ऐसा नहीं है। मुझे सभापति चुना गया है और एक लाख रूपये देने की शर्त मंजूर की गई है। वह इसलिए कि मेरे द्वारा हिन्दी का प्रचार हो। काव्य के कई विभाग हो गये हैं। उनकी बातें तो कवियों से आप पेटभर सुन सकते हैं, किन्तु मेरे द्वारा तो आप केवल हिन्दी प्रचार की बातें सुन सकते हैं, क्योंकि दूसरे पर मेरा अधिकार नहीं है। जब मैं इन्दौर में इसी सभापति के पद को लेने के लिए आया था तो पुण्यद्गलोक मालवीय महाराज से आशीर्वाद की भिक्षा माँगी थी, तब उन्होंने लम्बा खत लिखकर मुझे आशीर्वाद भेज दिया था, परन्तु अब तो वे बीमार पडे हैं और उनके पास काम भी बहुत है। मैं केवल आप लोगों से आशीर्वाद चाहता हूँ। मालवीय जी की शारीरिक स्थिति भी बिगड गई है। उनको बाहर भी जाना था इसलिए उन्होंने यह पद ग्रहण नहीं किया। तब मजबूर होकर मुझे ही यह पद ग्रहण करना पडा। मालवीयजी का तार भी आ गया है, जिसमें उन्होंने मुझे आशीर्वाद भी दिया है। बाकी तार का तरजुमा करने की आवश्यकता नहीं है। हमारी प्रार्थना है कि उनको भगवान शतायु बनाये । उनकी उम्र ७० वर्ष की है, परन्तु जब वे काम करते है तो १७ वर्ष के जवान की तरह करते हैं। अतः भगवान उनको दीर्घायु करेंगे। वे हिन्दुस्तान की अविछिन्न सेवा कर रहे हैं, वैसी करते रहें। मैं तो उनका आशीर्वाद लेकर उनका प्रतिनिधि बनकर आया हूँ।

उन्होने दक्षिण भारत तथा अन्य प्रांतों में हिन्दी का प्रचार जो किया है, वह किसी से छिपा नहीं है, उसके लिए उनके हृदय में उतना ही प्रेम है जितना आपको और मुझको है।

आज हमारे सामने तीन बातें उपस्थित हैं। उनका खुलासा कर देना आवद्रयक है। पैसा देने वालों के लिए तीन बातें उपस्थित हैं। पहली बात विश्वविद्यालय की है, जिसका उल्लेख महाराजा साहेब ने अपने भाषण में किया है, और प्रसन्नता प्रगट की है। उसके लिए भी आपसे भिक्षा माँगनी है। लोग उसमें पैसा देवें या सम्मेलन में देंवे या प्रचार कार्य में देवें। जिनके पास तीन कौड़ी देने को है उनके लिए कोई बात नहीं, परन्तु जिसके पास एक ही कौडी है, वह किसको दे ? क्योंकि एक कौडी के टुकडे तो हो नहीं सकते। यहाँ पर महाराजा साहब, सेठ हुकुमचन्दजी और डॉ. सरजूप्रसादजी आए हुए हैं। वे भी नाहीं कर दें तो भी मैं कहता हूँ कि इन्दौरवासियों को पहले विश्वविद्यालय को सहायता देनी चाहिए यदि उनको भली प्रकार से विश्वास हो जाए कि यह कार्य अच्छा है और कार्यकर्त्ताओं में शक्ति है। उसमें असली काम करने की इच्छा भी है। कवि लोग तो इस प्रकार की बातें सुना देते हैं, परन्तु जब उनसे पूछते हैं कि आप क्या करते हैं तब वे कह देते हैं कि हममें तो कवि शक्ति है। हम लोग तो आपको करने के लिए कह देते हैं। परन्तु ऐसा नहीं होना चाहिए, आपको यह विश्वास हो जाए कि विद्रवविद्यालय के सब साधन तैयार हैं, केवल आपके पास धन की ही कमी है, तो आपको सबसे पहले उसमें योग देना चाहिए, फिर हिन्दी साहित्य सम्मेलन को और फिर दक्षिण हिन्दी प्रचार को। यह बात मैं सभापति की हैसियत से कहता हूँ, क्योंकि मेरे इस सम्मेलन का सभापति रहते हुए उसको कोई हानि न पहुँचे। आर्थिक संग्रह में घाटा आवे ऐसा कार्य मेरे हाथ से हो नहीं सकता और ऐसा कार्य मैं करूँगा भी नहीं, जो आपकी नियमावली के विरूद्ध हो, क्योंकि इस पद से मैने अपने सिर पर बडी भारी जिम्मेदारी ले ली है। इसका मैंने चंद घंटे में ज्ञान ले लिया है। जिस कार्य का आरम्भ कर दिया है, उसको सफल बनाना मेरा कार्य है। इसलिए मुझ में जितनी शक्ति है और भगवान जितनी शक्ति देगा, उसका इस्तेमाल इस कार्य को सफल बनाने के लिए करूँगा, ऐसा आप विद्रवास रखें।

हिन्दी प्रचार के लिए लिपि का एक होना भी आवद्रयक है। इसके लिए एक लिपि-परिषद् होने वाली है, जिसके लिए विशेष आपको काका साहेब सुनावेंगे। हिन्दी भाषा संस्कृत से पैदा हुई है, आसाम और बंगाल भी इसी से सम्बन्धित हैं। दक्षिण भारत की भाषा द्राविड़ी मानी जाती है। मैं तो यह मानता हूँ कि वह संस्कृत से पैदा हुई है। अगर वे सच्चे हैं तो द्रविडो लोगों का कथन है कि पहले वे अनार्य थे, पीछे से आर्य बनाये गए। परन्तु शिक्षित लोगों का कथन है कि हम जंगली नहीं थे। हममें आर्यता और संस्कृति मौजूद थी। तमिल, तेलगू, कनाडी आदि भाषाएँ संस्कृत से भरी हुई हैं। बंगला भी संस्कृत से परिपूर्ण है। जब उनको अपनी भाषा में कोई शब्द नहीं मिलता तो वे इससे शब्द लेते हैं और उनका प्रयोग करते है। अतः सब भाषाओं की लिपि

एक होना आवश्यक है। इसके लिए हिन्दी में शायद संशोधनो की आवश्यकता भी है, परन्तु मैं इस झंझट में नहीं पडना चाहता । मैंने तो एक खयाल आपके सामने रख दिया है, क्योंकि लिपि के एक होने से सीखने में बडी सरलता और सुगमता होगी। इसकी बागडोर काका साहेब ने अपने हाथ में ले ली है और वे चलायेंगे। जब काका साहब दक्षिण भारत से आसाम और उत्कल गये तो उनके सामने एक बड़ी भारी कठिनाई विंध्याचल के समान खडी हो गई। वहाँ के लोग कहने लग गए कि ये हमारे प्रांत की भाषा मिटा कर हिन्दी का प्रचार करने आए है, परन्तु ऐसी बात नहीं है। अपने प्रांत में वह भाषा तो चले किन्तु हिन्दी का प्रचार विद्रोष हो, जिससे यह राष्ट्रभाषा बन सके। यों तो बंगला का साहित्य भी बहुत है, परन्तु वह राष्ट्रभाषा कभी भी बन नहीं सकती है। राष्ट्रभाषा तो केवल हिन्दी ही बन सकती है। परन्तु मैं तो उसकी भी मर्यादा रख देना चाहता हूँ कि हव अन्य प्रांतों की भाषाओं का स्थान न ले लें। इसके लिए साहित्य-सम्मेलन में प्रस्ताव रखकर इस बात को साफ कर देना होगा।

हिन्दी भाषा हमारी मातृभाषा है, उसमें संस्कृत के शब्द रख दिए जाएँ ऐसा नहीं हो सकता। हिन्दू हो या मुसलमान हो वह उन्हें सीखे, ऐसा हमारा मतलब नहीं है।यदि हम इसमें संस्कृत शब्द खूब भर दें तो इसका मतलब यह होगा की मुसलमान भाइयो को भी संस्कृत सीखना चाहिए, परन्तु ऐसा हो नहीं सकता, कई एक गद्य भी ऐसा आते है जो संस्कृत शब्दों से भरे रहते हैं, जिसको ग्रामीण लोग बिल्कुल नहीं समझ सकते। सात करोड़ मुसलमान भाइयो को छोड करके हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाना चाहें, यह बात भी आकाश पुष्प के समान होगी। याने आकाश में पुष्प लगाकर उससे सुगन्ध लेने के समान है। ग्रामीण लोग बहुत भोले-भाले हैं। उनके समझने के लिए सीधी और सरल भाषा होनी चाहिए। यहाँ प्रदर्शनी लगाई गई है उसमें भी यह बताया गया है इन्दौर-स्टेट में क्या होता है। आपके देहाती भाई क्या चीज बनाना जानते हैं। ये चीजें हमारे लायक हैं या नहीं, ये बातें जानना आवद्रयक है। शहरी लोग जानते हैं कि हमारा ग्रामीणों से बहुत कम सम्बन्ध है, परन्तु मुझे जितना ज्ञान ज्यादा होता जाता है मै तो जानता हूँ कि शहरी लोगों का देहातियों से धनिष्ठ संबंध है। मैं तो कहूँगा कि जो कुछ हिन्दुस्तान में मिलता है, वह किसानों के ही मार्फत मिलता है। यदि वे लोग इंकार कर जावें, आपका कार्य नहीं करें, तो आपको भूखा मरना पडेगा और उसमें महाराजा साहब का भी नम्बर आ जाए और सेठ हुकुमचंद का भी नंबर हो जाए । क्योंकि कोई भी चाँदी या सोने से पेट नहीं भर सकता । वह मेरी तरह सत्याग्रह करके नहीं किन्तु यह कह कर इंकार करे कि हमें भरपेट भोजन नहीं मिलता तो हम भूखे रहकर काम कैसे करें तो शहरी लोगों को बडी मुसीबत उठानी पडे । भारत वर्ष में सात लाख देहात है। सारा कार्य देहातों पर ही निर्भर है। इसलिए जिसे ये समझ सकें, ऐसी भाषा का प्रयोग करने की आवद्रयकता है। उनको अरबी या फारसी का कोई शब्द आ जाए तो उसका हम एकदम तिरस्कार कर दें, यह ठीक नहीं। क्योंकि ऐसा करने से हम हिन्दी को राष्ट्रभाषा नहीं बना सकते । मैं तो

इस कार्य के लिए आप लोगों से भिक्षा प्राप्त करना चाहता हूँ । यह कार्य महाराजा साहेब के आद्वाीर्वाद से चल सकता है। किसी को महात्मा कहो या कुछ कहो जो अमली काम करे तभी वह कार्य सफल हो सकता है। मैं आपको एक लाख रूपया लेकर भाग नहीं जाऊंगा, किन्तु इसी कार्य को विशेष विभूषित करने के लिए प्रयत्न करूँगा। हरिहर शर्मा प्रयाग से कुछ हिन्दी सीखकर मद्रास में गए थे और उन्होंने वहाँ जाकर हिन्दी साहित्य का प्रचार किया, जिसका छोटा सा प्रदर्शन यहाँ लाए हैं, जिसको आप लोग देखना चाहते हैं तो आज देख सकते है, उस ओर आपका ध्यान खींचना मेरा काम था। अब दस मिनट में कितना कार्य करना है और कब समाप्त करना है, यह तो अब महाराजा साहब की बात है मेरे हाथ की बात नहीं।